

अध्ययन जरूरी है, चूंकि इसी परंपरा में मनुष्य के सर्वोच्च एवं अंतिम लक्ष्य के साथ-साथ मनुष्य जीवन की पूर्णता का मार्ग छिपा है। आज मानव जाति 'जियो और जीने दो' वाले संस्कार भूल गई है। अपनी तरह दूसरों को जीने का अधिकार वह नकार रही है। चारों ओर प्रभुत्व की लड़ाई छिड़ी हुई है। क्या मनुष्य, क्या समाज और क्या राष्ट्र सभी इस जंग में मानवता भूल गए हैं। घर-परिवार अशांत, समाज अशांत और देश भी अशांत। विश्वभर में यही अशांति मानव जाति के लिए खतरा बन रही है। इसका उपाय हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा में निहित है, क्योंकि इसमें वैज्ञानिक और व्यावहारिक चिंतन पर बल दिया है। यह ज्ञान परंपरा 'विश्व बंधुत्व' की भावना से ओतप्रोत है तथा विश्व के समस्त समुदायों एवं प्राणी मात्र के कल्याण की भावना इसमें अंतर्भूत है। इसी के मद्देनजर भारत में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस ज्ञान परंपरा के अध्ययन एवं अध्यापन पर बल दिया है, ताकि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रख सकें। साथ ही वर्तमान समस्याओं से भी निजात पा सकें।

आज मनुष्य विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों से जूझ रहा है। नीत नई बीमारियों से मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ गया है। कैंसर, डायबिटीज, हार्ट अटैक जैसी अनेकों शारीरिक और डिप्रेशन, स्ट्रेस, एंजायटी जैसी भिन्न मानसिक बीमारियों के चलते मनुष्य न जीवन जी पा रहा है, न जीवन का आनंद ले पा रहा है। चिंता, आशा, तृष्णा, काम वासना से ग्रसित मनुष्य सार्थक जीवन नहीं जी रहा है। इन सबसे निजात पाने की दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा प्रासंगिक है, क्योंकि हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा के वेद, उपनिषद, गीता, पुराण, आयुर्वेद, योग आदि शास्त्रों में मनुष्य को शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्तर पर सुदृढ़ बनाने के गुर विद्यमान हैं। बशर्ते उसके अनुपालन की आवश्यकता है।

**निष्कर्ष-निष्कर्षतः** कहा जाए तो हजार वर्ष पुरानी भारतीय ज्ञान परंपरा धर्म, साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, कला, कर्म, उपासना, योग, अध्यात्म, भोग, तपस्या आदि सभी प्रकार के ज्ञान का अद्भुत संगम है। वेद, उपनिषदादि विभिन्न ग्रंथों में विद्या को मनुष्य जीवन का श्रेष्ठ अंग स्वीकार करते हुए मनुष्य को ज्ञानवान बनाने का प्रयास होता रहा है। यह ज्ञान परंपरा केवल भारतवर्ष के लोगों तक सीमित नहीं है, अपितु 'विश्व बंधुत्व' की भावना इसमें निहित है। मनुष्य एवं समाज का संबंध, मनुष्य जीवन का लक्ष्य एवं उसका उत्तरदायित्व, मनुष्य का शारीरिक, भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास आदि मानव जीवन से जुड़े विभिन्न अंगों के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा पथप्रदर्शक रही है। हजारों वर्षों बाद भी इसका महत्व कम नहीं हुआ है। भारतीय ज्ञान परंपरा 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना से आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी पहले थी। अब यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम अपनी इस विरासत का खुद तो लाभ उठाएँ ही, साथ ही दुनिया भर में उसका प्रचार-प्रसार करके भारत को फिर से 'विश्व गुरु' के पद पर आसीन करें। और मानव जाति की रक्षा एवं विकास के लिए यही कदम उचित होगा इसमें कोई दो राय नहीं है।

\*\*\*\*\*

#### आधार ग्रंथ :-

1. <https://www.wikipedia.org/>
2. <https://hindimedia.in/bharatiya-gyan-pranali-ki-prasangikata/>
3. <https://www.jagran.com/editorial/apnibaat-ncr-the-imperative-of-indian-knowledge-tradition-in-the-education-system-22412895.html>
4. <https://www.myresearchjournals.com/index.php/SRJIS/article/view/10029>
5. <https://indiafoundation.in/articles-and-commentaries/ancient-indian-knowledge-systems-and-their-relevance-today-with-an-emphasis-on-arthasastra/>
6. <https://rashtriyashiksha.com/indian-knowledge-tradition-and-national-education-policy/>

.....

## बैगा जीवन शैली में पारंपरिक ज्ञान और शब्द-संपदा

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय & डॉ. रुचि मिश्रा तिवारी

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय  
भोपाल,

ईमेल: arunkpandey2@gmail.com

प्रोफेसर, मानविकी एवं उदारकला संकाय, रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय  
भोपाल,

ईमेल: ruchivishesh@gmail.com

**सारांश :** प्रस्तुत शोध पत्र मध्य भारत की अत्यंत प्राचीन और विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTG) 'बैगा' के सांस्कृतिक जीवन, उनके पारंपरिक ज्ञान (Traditional Knowledge) और उससे जुड़ी विशिष्ट शब्द-संपदा का विश्लेषण करता है। स्वयं को 'माटी-पुत्र' और पृथ्वी का प्रथम मानव मानने वाले बैगाओं का जीवन पूर्णतः प्रकृति और वनों पर आधारित है। बैगाओं का पारंपरिक ज्ञान विशेष रूप से उनके 'बेवर' (स्थानांतरित खेती), औषधीय जड़ी-बूटियों के गहन ज्ञान और 'गुनिया' या 'देवार' द्वारा की जाने वाली जादुई-धार्मिक उपचार पद्धतियों में परिलक्षित होता है।

अध्ययन यह रेखांकित करता है कि बैगाओं की जीवन शैली उनकी भाषा 'बैगानी' में रची-बसी है, जिसमें दैनिक दिनचर्या, भोजन और सामाजिक संबंधों के लिए अनूठे शब्दों का भंडार है। उदाहरण के तौर पर, उनके भोजन में 'पेज' (कोदो-कुटकी का घोल), दिनचर्या में 'मुखारी' (दातुन करना), 'मुरगल' (दोपहर का भोजन) और 'बियारी' (रात का खाना) जैसे शब्द उनकी संस्कृति की विशिष्टता को दर्शाते हैं। साथ ही, शोध पत्र यह भी स्पष्ट करता है कि आधुनिकता, बाहरी समुदायों से संपर्क और औपचारिक शिक्षा के प्रभाव के कारण यह पारंपरिक शब्द-संपदा और ज्ञान अब लुप्त होने के कगार पर है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य बैगा जनजाति को इस अमूर्त विरासत का दस्तावेजीकरण करना और इसके संरक्षण की आवश्यकता पर बल देना है।

**बीज शब्द :** बैगा जनजाति, पारंपरिक ज्ञान, शब्द-संपदा, बैगानी बोली, बेवर खेती, नृवंशविज्ञान (Ethnography), सांस्कृतिक परिवर्तन।

**परिचय :** बैगा जनजाति मध्य भारत की एक अत्यंत प्राचीन और विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTG) है। ये मुख्य रूप से मध्य प्रदेश के डिंडोरी, मंडला, बालाघाट और छत्तीसगढ़ के कबीरधाम एवं मुंगेली जैसे जिलों के दुर्गम पहाड़ी और वन क्षेत्रों में निवास करते हैं। बैगा स्वयं को 'माटी-पुत्र' (धरती के पुत्र) और इस पृथ्वी पर जन्म लेने वाला प्रथम मानव मानते हैं। उनकी मान्यता है कि भगवान ने उन्हें धरती की रक्षा करने और उसे उपजाऊ बनाए रखने के लिए बनाया है। बैगाओं की जीवन शैली पूर्णतः प्रकृति और वनों पर आधारित है। वे अपने पारंपरिक ज्ञान के लिए पूरे विश्व में विख्यात हैं, जिसमें 'बेवर' (स्थानांतरित कृषि) और औषधीय जड़ी-बूटियों का गहन ज्ञान शामिल है। बैगा समाज में 'गुनिया' या 'देवार' का विशेष महत्व है, जो न केवल पुजारी के रूप में कार्य करते हैं, बल्कि जादुई-धार्मिक पद्धतियों और जड़ी-बूटियों के माध्यम से रोगों का उपचार भी करते हैं। उनकी संस्कृति की अन्य विशिष्ट पहचान में पुरुषों के लंबे लहराते बाल (जूड़ा) और बैगा महिलाओं के शरीर पर बने विस्तृत गोदना (Tattoo) चिन्ह शामिल हैं, जिन्हें वे मृत्यु के बाद भी साथ जाने वाला आभूषण मानते हैं। भाषाई दृष्टि से, बैगा 'बैगानी' बोली बोलते हैं, जो छत्तीसगढ़ी का ही एक रूप मानी जाती है और इंडो-आर्यन भाषा परिवार से संबंधित है। उनकी यह बोली उनके पारंपरिक ज्ञान, लोककथाओं और लोकगीतों

का प्रमुख वाहक है। बैगाओं की शब्द-संपदा में उनके दैनिक जीवन, जैसे कि भोजन के लिए 'पेज' (मक्का और कूटकी का घोल), सुबह के नाश्ते के लिए 'बासी', दोपहर के भोजन के लिए 'मुरगल' और रात के खाने के लिए 'बियारी' जैसे विशिष्ट शब्द उनकी संस्कृति की गहराई को दर्शाते हैं। हालांकि, समय के साथ बैगाओं की यह सांस्कृतिक विरासत बदल रही है। बाहरी समुदायों से संपर्क, आधुनिक शिक्षा और विकास कार्यक्रमों के प्रभाव के कारण उनकी पारंपरिक 'बैगानी' शब्दावली धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। युवा पीढ़ी अब हिंदी और छत्तीसगढ़ी का अधिक उपयोग कर रही है, जिससे उनके पारंपरिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण की आवश्यकता बढ़ गई है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य बैगाओं के इसी पारंपरिक ज्ञान और उनकी अनूठी शब्द-संपदा का विश्लेषण करना है ताकि इस अमूर्त धरोहर का संरक्षण किया जा सके।

**पारंपरिक कृषि ज्ञान**-पारंपरिक कृषि ज्ञान मुख्य रूप से समुदायों द्वारा हजारों वर्षों में विकसित किया गया वह अनुभवजन्य ज्ञान है जो मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता है। मध्य भारत की बैगा जनजाति इस ज्ञान की एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जो स्वयं को "माटी-पुत्र" (मिट्टी की संतान) मानते हैं और प्रकृति के साथ गहरा तालमेल रखते हैं। बैगाओं का पारंपरिक कृषि ज्ञान उनके धार्मिक विश्वासों, पारिस्थितिकी की समझ और जीवन जीने के सरल तरीके पर आधारित है। बैगा समुदाय की पारंपरिक खेती की सबसे प्रमुख विशेषता 'बेवर' (Bewar) है, जिसे 'झूम' या 'स्थानांतरित खेती' भी कहा जाता है। बैगा पारंपरिक रूप से हल चलाने के सख्त खिलाफ रहे हैं। उनका मानना है कि हल चलाना धरती माता की छाती को चीरने या उसे चोट पहुंचाने के समान है, इसलिए वे केवल कुदाल या खुदाई करने वाली छड़ियों (खंती) का उपयोग करते हैं। बेवर पद्धति में वे पहाड़ी ढलानों पर झाड़ियों और पेड़ों को काटकर उन्हें जला देते हैं और उस राख का उपयोग प्राकृतिक उर्वरक या खाद के रूप में करते हैं।

उनके कृषि चक्र में कोदो, कूटकी, मक्का, ज्वार और धान जैसे मोटे अनाज प्रमुख हैं। वे बीजों को बोने के लिए 'बुक्कड़' विधि का प्रयोग करते हैं, जिसमें बीजों को खेत में बिखेर दिया जाता है। बैगा ज्ञान के अनुसार, मिश्रित खेती (एक ही खेत में कई फसलें उगाना) मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने और कीटों से बचाव का एक प्रभावी तरीका है। कृषि कार्य केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि उनके धार्मिक और सामाजिक जीवन का केंद्र है। खेती की शुरुआत 'बिदरी' (Bidri) त्योहार से होती है, जहाँ गांव का पुजारी (देवार) बीज बोने से पहले धरती माता और 'ठाकुर देव' की पूजा करता है और अच्छी फसल के लिए बलि देता है। इसके अलावा, 'हरेली' (फसल की सुरक्षा के लिए) और 'नवा' (नई फसल कटाई का पर्व) जैसे त्योहार उनके कृषि ज्ञान और प्रकृति के प्रति सम्मान को दर्शाते हैं।

खेती में लैंगिक भूमिकाएँ भी स्पष्ट हैं। बैगा महिलाएँ खेत साफ करने और जलाने में मदद करती हैं, लेकिन वे बीज बोने का काम नहीं करती क्योंकि वे पृथ्वी को एक स्त्री मानती हैं और उसकी देखभाल करती हैं। महिलाएँ रसोई उद्यानों (बाड़ी) में सब्जियाँ उगाने और अनाज के भंडारण के लिए जिम्मेदार होती हैं।

वर्तमान में, वन कानूनों और आधुनिक प्रभाव के कारण बैगा समुदाय बेवर खेती छोड़ कर settled (स्थायी) खेती या 'दोलिया' की ओर बढ़ रहा है। अब वे हलों और आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग भी करने लगे हैं। हालाँकि, उनका पारंपरिक ज्ञान अभी भी जड़ी-बूटियों, मिट्टी की पहचान और मौसम के पूर्वानुमान में बहुत प्रभावी है। इस पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण न केवल संस्कृति के लिए, बल्कि जैव विविधता और टिकाऊ भविष्य के लिए भी अनिवार्य है।

### पारंपरिक औषधीय ज्ञान (Ethno-medicine)

पारंपरिक औषधीय ज्ञान (Ethno-medicine) एक ऐसी पद्धति है

जिसमें किसी विशिष्ट संस्कृति के सदस्य बीमारियों के बारे में सोचते हैं और उनके उपचार के लिए सामाजिक और औषधीय रूप से स्वयं को संगठित करते हैं। मध्य भारत की बैगा जनजाति इस ज्ञान की विशेषज्ञ मानी जाती है, जिन्हें गोंड और कोल जैसी अन्य जनजातियाँ "मिट्टी के रहस्यों" का ज्ञाता और कुशल "औषधि-पुरुष" (Medicine-men) मानती हैं। बैगाओं का यह ज्ञान उनके जीवन जीने के तरीके, धार्मिक विश्वास और वनों के साथ उनके गहरे संबंध पर आधारित है।

बैगा समाज में चिकित्सा के मुख्य संरक्षक गुनिया (Guniya) और देवार (Dewar) होते हैं। गुनिया एक पारंपरिक उपचारक और जादूगर होता है जो तंत्र-मंत्र और जड़ी-बूटियों (Ethno-botany) दोनों का उपयोग करता है। देवार मुख्य रूप से पुजारी होता है, लेकिन वह भी औषधीय विशेषज्ञ के रूप में कार्य करता है। यह ज्ञान पूरी तरह से मौखिक है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बिना किसी दस्तावेजीकरण के हस्तांतरित होता है।

रोगों की पहचान और निदान के लिए बैगा उपचारक कई तरीके अपनाते हैं। सामान्यतः गुनिया मरीज की नाड़ी की गति या हृदय की धड़कन को छूकर बीमारी के लक्षणों को पहचानता है। अलौकिक शक्तियाँ या रुष्ट देवताओं की पहचान के लिए 'सुपा-तुमा' (Supa-tuma) विधि का उपयोग किया जाता है, जिसमें सुप में चावल के दानों और लौकी के पत्र (Tunta) के माध्यम से देवताओं से संवाद किया जाता है। बैगाओं का मानना है कि बीमारियाँ अक्सर बुरी आत्माओं या देवताओं के क्रोध के कारण होती हैं, जिन्हें शांत करने के लिए 'लारू काज' (Narayan-deo) के लिए सुअर की बलि जैसे अनुष्ठान किए जाते हैं।

बैगाओं का वनस्पति तंत्र अत्यंत समृद्ध है। वे विभिन्न रोगों के उपचार के लिए विशिष्ट पौधों का उपयोग करते हैं:

**पीलिया (Jaundice):** इसके लिए कालमेघ, भुईआंवला, और पुनर्नवा की जड़ों का लेप उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, मजीठ (Rubia cordifolia) की जड़ों को महुआ की शराब में मिलाकर पिलाना एक प्रभावी उपचार माना जाता है।

**मलेरिया:** चिरचिरी (Achyranthus aspera) के पत्तों का लेप काली मिर्च और लहसुन के साथ दिया जाता है।

**खांसी और सर्दी:** अडूसा (Adusa) के पत्तों का काढ़ा या शहद के साथ जड़ी-बूटियों का चूर्ण दिया जाता है।

**सर्पदंश (Snake Bite):** अस्पताल दूर होने के कारण, बैगा 'जुलजामनी' और 'झुलुइया' नामक पौधों के रस का उपयोग करते हैं।

**अन्य:** कुंभी (Kumbhi) के पेड़ की छाल का उपयोग घर के प्रवेश द्वार पर बुरी आत्माओं को रोकने के लिए किया जाता है, जबकि सदाबहार को बीमारी मुक्त वातावरण के लिए लगाया जाता है।

बैगा 'सफेद जादू' (समुदाय के लाभ के लिए) और 'काला जादू' (नुकसान पहुंचाने वाला) के बीच स्पष्ट अंतर करते हैं। वर्तमान समय में, आधुनिक स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी और सांस्कृतिक प्रभाव के कारण, बैगा समुदाय अभी भी अपने पारंपरिक उपचारकों पर अधिक निर्भर है। हालांकि, यह ज्ञान तेजी से लुप्त हो रहा है, इसलिए इसे बायोपायरेसी (Biopiracy) से बचाने और दस्तावेजीकरण के माध्यम से संरक्षित करने की तत्काल आवश्यकता है। बैगाओं का यह पारंपरिक औषधीय ज्ञान न केवल उनके स्वास्थ्य की रक्षा करता है, बल्कि जैव विविधता के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

### विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और शब्द-संपदा

बैगा जनजाति की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और उनकी शब्द-संपदा उनके "माटी-पुत्र" (मिट्टी की संतान) होने के गौरव और प्रकृति के साथ उनके अटूट संबंध को दर्शाती है।

### विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान (Unique Cultural Identity):

स्व-पहचान: बैगा स्वयं को पृथ्वी पर पैदा होने वाला पहला मानव और

'माटी-पुत्र' मानते हैं। उनका मानना है कि वे भगवान द्वारा विशेष रूप से बनाए गए हैं और पूरी पृथ्वी के राजा हैं।

### शारीरिक पहचान (Identity Marks):

पुरुषों का जूड़ा: बैगा पुरुष अपने लंबे बालों को नहीं काटते और उन्हें सिर के पीछे बाईं ओर एक गांठ या जूड़े (Jura) में बांधते हैं, जो उनकी विशिष्ट पहचान है।

**महिलाओं का गोदना:** बैगा महिलाओं के लिए गोदना (Tattooing) शरीर का मुख्य आभूषण है। उनके माथे पर बना 'सीता-रसोई' (Sita-Rasoi) का प्रतीक, जिसे 'कपाड़ गोदे' (Kapad Goday) कहा जाता है, उनकी प्रमुख पहचान है। माना जाता है कि गोदना वाली महिला को ससुराल में सम्मान और मृत्यु के बाद मोक्ष मिलता है।

**सामाजिक संरचना:** बैगा समाज पितृसत्तात्मक है और विभिन्न अंतर्विवाही समूहों (जैसे बिंझवार, नरोतिया, भरोतिया आदि) में विभाजित है।

### शब्द-संपदा (Vocabulary/Lexicon):

बैगा लोग 'बैगानी' बोली बोलते हैं, जो छत्तीसगढ़ी का एक रूप मानी जाती है और इंडो-आर्यन भाषा परिवार से संबंधित है। उनकी शब्दावली उनके दैनिक जीवन और प्राकृतिक परिवेश से गहराई से जुड़ी है:

**भोजन से संबंधित शब्द:** पेज (Pej): चावल या मोटे अनाज का घोल, जो उनका मुख्य आहार है।

मुखारी (Mukhari): सुबह हाथ-मुँह धोना और दातुन करना।

बासी (Basi): सुबह का नाश्ता, जो अक्सर रात का बचा हुआ भोजन होता है।

मुर्गल (Murgal): सुबह और दोपहर के बीच का भोजन (Lunch)।

मारिया (Mariya): दोपहर बाद का भोजन।

बियारी (Biyari): रात का भोजन।

### दैनिक उपकरणों के शब्द:

टांगिया (Tangiya): कुल्हाड़ी।

खंती (Khanti): खुदाई करने वाली छड़ी।

तुकनी (Tukni): बांस की टोकरी।

छका (Chhaka): महुआ शराब पीने के लिए पत्तों से बना प्याला।

सामाजिक और धार्मिक भूमिकाएँ:

देवार (Dewar): गांव का पुजारी, जिसका स्थान सबसे ऊंचा होता है।

गुनिया (Guniya): पारंपरिक उपचारक या जादूगर जो जड़ी-बूटियों का ज्ञाता होता है।

मुकदम (Mukaddam): गांव का मुखिया।

वर्तमान में आधुनिकता और अन्य संस्कृतियों के प्रभाव के कारण बैगानी शब्दावली धीरे-धीरे कम हो रही है और यह बोली विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही है क्योंकि युवा पीढ़ी अब हिंदी और छत्तीसगढ़ी को प्राथमिकता दे रही है।

### वस्त्र और आभूषण:

#### वस्त्र (Clothing)

लंगोटी (Langoti): यह पुरुषों द्वारा कमर पर लपेटा जाने वाला मुख्य वस्त्र है।

बंडी (Bandi): पुरुषों द्वारा शरीर के ऊपरी हिस्से में पहना जाने वाला बनियान या जैकेट (Vest-coat)।

फेता (Pheta): पुरुषों द्वारा सिर पर बांधी जाने वाली पारंपरिक पगड़ी (Turban)।

मूंगी, कनिहार, बगरा, चदरिया, और चौखाना: ये बैगा महिलाओं द्वारा पहनी जाने वाली पारंपरिक साड़ियाँ हैं, जिन्हें अक्सर पनिका बुनकरों द्वारा बुना जाता है।

धुतिया (Dhutia): महिलाओं द्वारा पहना जाने वाला कपड़े का एक छोटा टुकड़ा जो कंधे से घुटनों तक शरीर को ढंकाता है।

पोकखा (Pokkha): महिलाओं द्वारा पहनी जाने वाली ब्लाउज।

थोला (Thola): यात्रा या नृत्य के दौरान पुरुषों द्वारा अपने साथ ले जाया जाने वाला सूखा भोजन, जिसे वे अपने वस्त्रों के साथ रखते हैं।

### आभूषण (Ornaments)

बैगा समुदाय, विशेष रूप से महिलाएँ, विभिन्न प्रकार के धात्विक और गैर-धात्विक आभूषणों की शौकीन होती हैं:

गरिया माला (Guriya Mala) / भंवरी माला (Bhauri Mala): कांच के रंगीन मोतियों से बना हार।

सुता / सुतिया (Suta/Sutiya): गले में पहना जाने वाला चांदी का मोटा हार या हंसली (Silver necklet)।

हवल (Hawal): चांदी या सोने के पुराने सिक्कों को गूँथकर बनाई गई माला।

मूंगा बलियाँ (Moonga Baliyan): कान के ऊपरी हिस्से (लोब) में पहने जाने वाले आभूषण।

बारी (Bari): कान के निचले हिस्से में पहने जाने वाले झुमके।

नगमोर (Nagmori): बांहों पर पहना जाने वाला बाजूबंद (Armllet)।

कड़ा (Kada): पुरुषों और महिलाओं दोनों द्वारा कलाई पर पहना जाने वाला चांदी का कड़ा।

बिछिया (Bhicchiya) / चुटकी (Chutki): पैर की उंगलियों में पहने जाने वाले छल्ले।

फुंदरा (Phundara): बालों को सजाने के लिए उपयोग किए जाने वाले रंगीन रिबन और फूल।

बीरन (Birans): नृत्य के समय महिलाओं द्वारा बालों में लगाई जाने वाली विशेष घास की सजावट।

गोदना (Godna/Tattoo): बैगा महिलाओं के लिए यह शरीर का सबसे महत्वपूर्ण और स्थायी आभूषण माना जाता है। माथे पर बना 'सीता-रसोई' (Kapad Goday) का चिन्ह उनकी विशिष्ट पहचान है। आधुनिक समय में, बैगा युवाओं के बीच अब पैट, शर्ट, जींस और टी-शर्ट जैसे आधुनिक वस्त्रों का चलन बढ़ गया है, जबकि पारंपरिक वस्त्रों को अब मुख्य रूप से त्योहारों और विशेष अवसरों पर ही पहना जाता है।

**महुआ (Mahua):** बैगा जनजाति के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में महुआ (Madhuca indica) का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। महुआ न केवल उनके भोजन और जीविकोपार्जन का साधन है, बल्कि इसे उनके बीच 'अमृत' या पवित्र जल के समान माना जाता है।

महुआ के बारे में मुख्य बिंदु नीचे दिए गए हैं:

**1. सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व:** बैगा समुदाय में जन्म से लेकर मृत्यु तक हर विशेष अवसर पर महुआ की शराब का उपयोग अनिवार्य माना जाता है।

अतिथियों का स्वागत महुआ की शराब भेंट करके किया जाता है और इसे देवताओं को भी अर्पित किया जाता है।

बैगा लोग महुआ के पेड़ को अत्यंत पवित्र मानते हैं और इसे कभी नहीं काटते।

**2. महुआ शराब (मद/मांड) और निर्माण विधि:** महुआ के फूलों को सुखाकर और सड़ाकर शराब तैयार की जाती है, जिसे स्थानीय भाषा में 'मद' या 'मांड' कहा जाता है। शराब बनाने के लिए आसवन (Distillation) विधि का प्रयोग किया जाता है, जिसमें चार बर्तनों के सेट का उपयोग होता है। आसवन के दौरान प्राप्त होने वाली सबसे शुद्ध और तीव्र शराब को 'फुली' कहा जाता है।

बैगा पुरुष और महिलाएँ इसे पारंपरिक रूप से पत्तों के बने प्याले, जिसे 'छका' कहते हैं, में पीते हैं।

**3. खाद्य और औषधीय उपयोग:** महुआ के फूलों को सुखाकर साल भर के लिए संग्रहित किया जाता है और इनसे चटनी भी बनाई जाती है।

बैगा उपचारक (गुनिया) महुआ शराब का उपयोग औषधि के आधार के रूप में करते हैं; जैसे पीलिया (Jaundice) के इलाज के लिए इसमें मजीठ की जड़ों का चूर्ण मिलाकर दिया जाता है।

**4. आर्थिक आधार:** महुआ का संग्रह बैगा अर्थव्यवस्था का मुख्य हिस्सा है, जिसे विशेष रूप से महिलाएँ वनों से एकत्र करती हैं।

वे महुआ के फूलों और इसके बीजों (डोरी) को स्थानीय साप्ताहिक बाजारों (हाट) में बेचकर अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए नकद राशि प्राप्त करते हैं।

आधुनिक प्रभाव के कारण नई पीढ़ी में महुआ शराब के सेवन की आदतों में कुछ बदलाव आ रहा है, जहाँ शिक्षित युवा इसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति सचेत हो रहे हैं।

**भाषा और व्याकरण की संरचना-** भाषा और व्याकरण की संरचना किसी भी समुदाय की पहचान और उसके विचारों की अभिव्यक्ति का मुख्य आधार होती है। स्रोतों के अनुसार, भाषा को उच्चारण किए जाने वाले संकेतों की एक नियमबद्ध व्यवस्था माना गया है, जिसके माध्यम से एक सामाजिक समूह के सदस्य परस्पर सहयोग और अंतःक्रिया करते हैं। भाषा की संरचना मुख्य रूप से निम्नलिखित पाँच मूल तत्वों से मिलकर तैयार होती है:

**वर्णमाला या ध्वनि (Phonemes):** यह भाषा की सबसे छोटी इकाई है। बिना ध्वनि के भाषा का निर्माण संभव नहीं है क्योंकि मन के भावों को प्रकट करने के लिए मुख से उच्चारण आवश्यक है।

**शब्दावली (Morphemes):** ध्वनियों के मेल से शब्द बनते हैं। ये 'सरल' (जैसे: हम) या 'जटिल' (जैसे: हमराही) हो सकते हैं। शब्द अर्थयुक्त होते हैं और इनके माध्यम से ही मन के भाव प्रकट किए जाते हैं।

**वाक्य (Sentence):** अनेक शब्दों को नियमानुसार जोड़कर वाक्य बनाए जाते हैं, जिनका कार्य भावों को पूर्णतः स्पष्ट करना होता है।

**व्याकरण (Grammar):** व्याकरण वह शास्त्र है जो शब्दों के शुद्ध रूप और प्रयोग के नियमों (जैसे लिंग, वचन, काल) का निरूपण करता है। इसके तीन मुख्य अंग हैं: अक्षर विचार, शब्द विचार और वाक्य विचार।

**लिपि (Script):** यह अक्षरों को अंकित करने या लिखने का रूप है।

**बैगानी बोली और व्याकरण की विशिष्टता:-** बैगा जनजाति की अपनी कोई स्वतंत्र लिपि नहीं है; उनकी बैगानी बोली पूर्णतः मौखिक है। विद्वानों के अनुसार बैगानी, छत्तीसगढ़ी का एक रूप है और इंडो-आर्यन भाषा परिवार से संबंधित है। इसकी व्याकरणिक संरचना की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

संज्ञा और सर्वनाम: बैगानी में संज्ञा के पाँच प्रकार (व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, पदार्थवाचक, समूहवाचक और भाववाचक) होते हैं। सर्वनामों का प्रयोग संवाद के लिए किया जाता है।

लिंग निर्धारण: बैगानी में स्त्री लिंग की पहचान के लिए मूल शब्दों में अक्सर 'इ' (i), 'इन' (in), 'एन' (en) जैसे प्रत्यय जोड़े जाते हैं। जैसे: 'भतीज' से 'भतीजेन'।

वचन: बहुवचन बनाने के लिए संज्ञा के बाद अक्सर 'मन' जोड़ा जाता है (जैसे: दाउ मन) या शब्द से पहले 'सफ्फो' या 'रदा' (सब) लगाया जाता है। विशेषण और द्विरुक्ति (Reduplication): आयु में भेद करने के लिए जड़ शब्दों के साथ 'बड़का' (बड़ा), 'मझला' (मझला) और 'नान' (छोटा) जैसे विशेषणों का प्रयोग होता है। इसके अलावा, 'बाबा', 'दादा' जैसे शब्दों में द्विरुक्ति बैगानी की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

क्रिया और कारक: बैगानी व्याकरण में बुन्देली और गोंडी का प्रभाव भी दिखता है। उदाहरण के लिए, भूतकाल में 'ने' का प्रयोग (जैसे: वाह ने पूछे) और उत्तम पुरुष एकवचन में 'ना' प्रत्यय का अधिक प्रयोग किया जाता है। बैगानी व्याकरण हिंदी की तुलना में कुछ लचीला है। जहाँ हिंदी में बड़ों के लिए 'आप' और छोटों के लिए 'तुम' का प्रयोग होता है,

वहीं बैगानी में दोनों के लिए समान रूप से 'तै' शब्द का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में आधुनिकता और बाहरी संपर्क के कारण बैगानी शब्दावली में छत्तीसगढ़ी और हिंदी का मिश्रण बढ़ रहा है, जिससे इसकी मौलिक शुद्धता के लुप्त होने का खतरा बना हुआ है।

**सांस्कृतिक परिवर्तन और चुनौतियाँ-** बैगा जनजाति, जो स्वयं को "माटी-पुत्र" और पृथ्वी का पहला मानव मानती है, वर्तमान में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक संक्रमण के दौर से गुजर रही है। आधुनिकता, शिक्षा और बाहरी समुदायों के साथ बढ़ते संपर्क ने उनकी पारंपरिक जीवनशैली में कई परिवर्तन और चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं, जो निम्नलिखित हैं:

**1. आजीविका और कृषि पद्धति** - बैगा पारंपरिक रूप से 'बेवर' (स्थानांतरित खेती) और शिकार पर निर्भर थे। वन कानूनों और सरकारी हस्तक्षेप के कारण अब वे settled (स्थायी) कृषि की ओर बढ़ रहे हैं।

परिवर्तन: वे अब हलों और आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग करने लगे हैं, जबकि पहले वे धरती पर हल चलाना पाप मानते थे।

चुनौती: स्थायी खेती में उत्पादकता कम होने के कारण बैगा समुदाय में ऋणग्रस्तता और मजदूरी पर निर्भरता बढ़ी है।

**2. वेशभूषा और शारीरिक पहचान** - आधुनिकता का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव बैगाओं की पहचान के प्रतीकों पर पड़ा है: पहचान का संकट: बैगा पुरुषों की विशिष्ट पहचान उनका 'जूड़ा' (Jura) था, जो अब नई पीढ़ी के लड़कों के बीच लुप्त हो रहा है क्योंकि वे अब आधुनिक हेयर-कट अपनाने लगे हैं।

गोदना (Tattooing): बैगा महिलाओं के लिए गोदना शरीर का मुख्य आभूषण था, लेकिन अब यह प्रथा भी धीरे-धीरे कम हो रही है क्योंकि आधुनिक युवतियाँ इस कष्टदायी प्रक्रिया से बचना चाहती हैं।

पहनावा: पारंपरिक लंगोटी और हाथ से बुनी साड़ियों के स्थान पर अब युवा पैंट, शर्ट, जींस, टी-शर्ट और मिल में बनी साड़ियों को प्राथमिकता दे रहे हैं।

**3. भाषा और बोली का संकट-** बैगाओं की अपनी मातृभाषा 'बैगानी' है, जो अब विलुप्ति के कगार पर है:

भाषिक परिवर्तन: स्कूली शिक्षा और बाहरी संपर्क के कारण युवा अब हिंदी और छत्तीसगढ़ी का अधिक उपयोग कर रहे हैं।

चुनौती: नई पीढ़ी बैगानी शब्दावली को भूल रही है और बाहरी लोगों के सामने अपनी बोली बोलने में संकोच महसूस करती है।

**4. पारंपरिक कला और मनोरंजन का बाजारीकरण-** परिवर्तन: बैगाओं के पारंपरिक नृत्य जैसे कर्मा, सैला और दशहरा अब मनोरंजन के साथ-साथ आय का साधन भी बन गए हैं। पेशेवर बैगा नृत्य दल अब मंच प्रदर्शन के लिए विभिन्न शहरों में जाते हैं।

चुनौती: मीडिया और बाजारीकरण के प्रभाव में पारंपरिक नृत्य शैलियों और गीतों की मौलिकता प्रभावित हो रही है। 'परधौनी हाथी नाच' जैसे कई पारंपरिक नृत्य नाटक लुप्त हो रहे हैं।

**5. अन्य महत्वपूर्ण चुनौतियाँ-** स्वास्थ्य और कुपोषण: आधुनिक स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी और वनों से दूरी के कारण कुपोषण और जलजनित बीमारियों का खतरा बढ़ गया है। पारंपरिक ज्ञान की चोरी (Biopiracy): बैगाओं का औषधीय ज्ञान मौखिक है, जिसका दस्तावेजीकरण न होने के कारण बायो-पायरेसी का खतरा बना रहता है। शराब का अत्यधिक सेवन: महुआ की शराब जो कभी केवल धार्मिक अनुष्ठानों का हिस्सा थी, अब उनके सामाजिक आर्थिक पतन का एक प्रमुख कारण बन रही है। बैगा समुदाय आधुनिक विकास और अपनी पारंपरिक संस्कृति के संरक्षण के बीच संघर्ष कर रहा है। यद्यपि वे मुख्यधारा से जुड़ रहे हैं, किंतु इस प्रक्रिया में उनकी अनूठी सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखना एक बड़ी चुनौती है।

**निष्कर्ष-** बैगा जनजाति मध्य भारत की एक अत्यंत प्राचीन और विशिष्ट पिछड़ी जनजाति (PVTG) है, जो स्वयं को 'माटी-पुत्र' और पृथ्वी का पहला मानव मानती है। निष्कर्षतः, यह समुदाय वर्तमान में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और सामाजिक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। प्रकृति के साथ अटूट संबंध और पारंपरिक ज्ञान: बैगाओं की पूरी जीवनशैली वनों और प्रकृति के साथ सहजीविता पर टिकी है। उनका पारंपरिक औषधीय ज्ञान (Ethno-medicine) और 'बेवर' (स्थानांतरित खेती) के प्रति उनका धार्मिक दृष्टिकोण उन्हें अन्य समुदायों से अलग करता है। स्रोतों के अनुसार, वे मिट्टी के रहस्यों के विशेषज्ञ माने जाते हैं। आधुनिकीकरण और बदलता जीवन प्रतिमान: विकास कार्यक्रमों, सड़क संपर्कों और शिक्षा के प्रसार के कारण बैगा समुदाय धीरे-धीरे मुख्यधारा से जुड़ रहा है। वे अब खानाबदोश जीवन छोड़कर स्थायी कृषि अपना रहे हैं और आधुनिक उपकरणों का उपयोग कर रहे हैं। नई पीढ़ी में शिक्षा के प्रति चेतना बढ़ी है और कुछ युवा नौकरियों में भी आ रहे हैं।

**सांस्कृतिक पहचान का संकट:** आधुनिकीकरण के सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ उनकी विशिष्ट पहचान को गंभीर खतरा पैदा हो गया है। बैगा पुरुषों का पारंपरिक 'जूड़ा' और महिलाओं का कष्टदायी 'गोदना' अब नई पीढ़ी के बीच लुप्त हो रहा है। सबसे चिंताजनक उनकी 'बैगानी' बोली का लुप्त होना है, क्योंकि युवा अब हिंदी और छत्तीसगढ़ी को प्राथमिकता दे रहे हैं। चुनौतियां और भविष्य की आवश्यकता: यद्यपि विकास हुआ है, लेकिन बैगा समुदाय अभी भी गरीबी, ऋणग्रस्तता, उच्च स्कूल ड्रॉपआउट दर और कुपोषण जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। इसके अतिरिक्त, महुआ शराब का अत्यधिक सेवन उनके सामाजिक-आर्थिक पतन का एक बड़ा कारण बना हुआ है।

**अंतिम विचार:** बैगाओं का भविष्य उनकी पारंपरिक विरासत और आधुनिक प्रगति के बीच संतुलन पर निर्भर करता है। स्रोतों का सुझाव है कि उनके औषधीय ज्ञान को बायोपायरेसी से बचाने के लिए दस्तावेजीकरण करना और उनकी कला व भाषा को संरक्षित करने के लिए जनजाति-विशिष्ट विकास दृष्टिकोण अपनाना अनिवार्य है। उन्हें अपनी जड़ों से काटे बिना विकास की मुख्यधारा में शामिल करना ही उनके अस्तित्व की रक्षा का एकमात्र मार्ग है।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एलविन, वैरियर. (1986). द बैगा (The Baiga). ज्ञान पब्लिशिंग हाउस (मूल प्रकाशन 1932, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).
2. कुमार, ए. एवं भारद्वाज, पी. (2020). द स्टडी ऑफ एलुसिडेशन ऑफ बैगा ट्राइब्स ऑफ मध्य प्रदेश. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज एंड सोशल स्टडीज, 7(12), 22-25.
3. चौरसिया, विजय. (2004). प्रकृति पुत्र बैगा. मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.
4. तिवारी, कृष्णा. (2019). बैगा जनजाति के उत्पत्ति की अवधारणा. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिंदी रिसर्च, 5.
5. निरगुणे, वसंत. (2011). बैगा (मोनोग्राफ). मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद.
6. प्रसाद, डी. वी. (2016). एनवायरनमेंटल चेंज एंड रिसोर्स मैनेजमेंट स्ट्रेटजीस अमंग द बैगा ऑफ मेकल हिल्स ऑफ अमरकंटक रीजन. मेकल इनसाइट्स, 4(1).
7. राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, छत्तीसगढ़. (2024). कक्षा-1 बैगानी-हिंदी पाठ्यपुस्तक (सत्र 2024-25).
8. राउ, बी. के. (1977). द ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया. कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
9. मजूमदार, डी. एन. (1958). द ईस्टर्न एंथ्रोपोलॉजिस्ट.
10. यादव, तन्वी. (2020). विच हंटिंग. ए ग्लोबल जर्नल ऑन सोशल एक्सक्लूजन, 1(2), 169-182.
11. उमा देवी, बी. वी. (2004). डिपेंडेंसी ऑन फॉरेस्ट्स फॉर लाइवलीहुड एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन एनवायरनमेंट. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी (LBSNAA).
12. फक्स, स्टीफन. (2018). द बैगा: अंडरस्टैंडिंग ऑफ अल्टीमेट रियलिटी एंड मीनिंग. मैकमिलन एंड कंपनी.
13. महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय. (2004). विज्ञापन एवं विक्रय प्रबंध (Advertising & Sales Management). दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, रोहतक.
14. इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र (IGNCA). (2024). संस्कृति एवं भाषा संरक्षण पुस्तक सूची.

## 'विष्णु पुराण में भारतबोध'

**डॉ. अनिल कुमार सिंह**

फ्लैट नंबर - 47सी, नंदन अपार्टमेंट्स, बीए ब्लॉक, के.सी. गोयल मार्ग, फेज-1, अशोक विहार, नई दिल्ली - 110052

'है बात कुछ ऐसी कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' इकबाल की इन पंक्तियों में जिस बात की ओर संकेत किया गया है उसका स्पष्ट उत्तर हमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'विरुद्धों के सामंजस्य' में मिल जाता है यानी सदियों से इस देश की प्रवृत्ति रही है कि वह एक-दूसरे के विरोधी विचार को भी अपने भीतर समाहित करने की क्षमता रखती है यही कारण रहा कि जितने भी आक्रमणकारी इस देश में आए उनमें से ज्यादातर इसी भूमि में रच- बसकर भारतीय हो गये। भारत की यह प्रवृत्ति वैदिक काल से ही चली आ रही है कि जहाँ वेदों में वर्णाश्रम व्यवस्था को कठोरता से लागू करने की बात कही गई है वही पुराणों तक आते-आते जो वेदों में उपेक्षित थे उन्हें श्रेष्ठ भी घोषित किया जाता है। स्त्री और दलित जिन्हें वेदों में हाशिए पर रखा गया था उन्हें 'विष्णु पुराण' ने स-तर्क श्रेष्ठता का दर्जा प्रदान किया, इसलिए अनायास ही इस दौर में विष्णु पुराण की प्रासंगिकता बढ़ गई है। 'विष्णु पुराण' का रचना काल क्या है इस पर विद्वान एक-दूसरे से सहमत तो नहीं दिखाई पड़ते लेकिन उपलब्ध स्रोतों के आधार पर कुछ विद्वानों ने अवश्य ही उसका रचनाकाल निर्धारित करने की कोशिश की है। जिसमें कुछ उपलब्ध जानकारी निम्नलिखित है-

रामचन्द्र दीक्षित (1951) :- 700-300 ईसा पूर्व

विन्सेंट स्मिथ (1908) :- 400-300 ईसा पूर्व

मारिज विण्टरनिट्ज (1932) :- सभ्यतः प्रथम शताब्दी का आरंभिक काल

राजेन्द्र चन्द्र हजारा (1940) :- 275-325 ई.

वेंडी डोनियर (1988) :- 450 ई.

चिन्तामण विनायक वैद्य ( 1925 ) :- 9वीं शताब्दी\*

ये कुछ प्रमुख विद्वानों ने विष्णु पुराण के रचना काल का निर्धारण किया है। किसी भी रचना का रचनाकाल महत्वपूर्ण तो है परन्तु इससे उसके भीतर लिखे गये भाव और विचार का महत्व कम नहीं होता। इसी कारण से विष्णु पुराण एक बार पुनः चर्चा के केन्द्र में है।

भारत में कुछ विषय ऐसे हैं जिस पर बात करते हुए हमेशा लोग कई खेमों में बंटते दिखाई देते हैं, जिसमें एक खेमा - पाश्चात्य प्रभाव साबित करता है तो दूसरा खेमा प्राचीन भारतीय परम्परा से जोड़कर उसे विशुद्ध भारतीय साबित करने की कोशिश करता है। किसी भी वैसे विषय पर वाद-विवाद करना वैसे तो विकासशीलता की निशानी ही है। यह होते भी रहना चाहिए क्योंकि कहते हैं ना कि किसी विषय पर मिल-बैठकर बात करने से समाधान निकल ही जाता है। हमारे देश में वैसे भी शास्त्रार्थ की परम्परा पौराणिक काल से ही चली आ रही है जिसका कुछ स्वरूप आज भी खाप - पंचायत में दिख भी जाती है जहाँ अपने समाज या गाँव की हर छोटी-छोटी समस्या का हल खोजने के लिए अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाते बल्कि पंचायत के स्तर पर ही मिल बैठकर ऐसी समस्याओं का हल खोज लिया जाता है। पर कुछ देश व्यापी मुद्दे होते हैं जिनका हल पंचायत स्तर पर ढूँढ़ पाना संभव नहीं है। जिसमें देश की प्राचीनता, स्त्री और दलित विमर्श आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिस पर यह देश कभी-भी उद्वेलित हो जाता है। विषय इतना संवेदनशील है कि सामान्य तौर पर लोग ऐसे विषयों पर बात करने से लगभग परहेज ही करते हैं। जिनको इन्हीं विषयों को केन्द्र में रखकर अपनी राजनीतिक रोटी सेकनी है वह इन विषयों पर उन्हीं पक्षों पर जोर देते नजर आते हैं